Indian Streams Research Journal
Volume 2, Issue. 12, Jan. 2013
ISSN:-2230-7850
Available online at www.lbp.world

ORIGINAL ARTICLE

मिथिला मे सामाजिक परिवर्तन के कारक

भुवनेश्वर कुमार भारती
बी० ए०, एम० ए०
शोध छात्र , इतिहास विभाग ,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा.

भूमिका

मिथिला में समय–समय पर सामाजिक परिवर्तन होते रहे हैं। मिथिला क्षेत्र कोई अवांचीन नहीं वरन् यह अतिप्राचीन है जिसकी ख्याति सर्वतोमावेन सर्वत्र व्याप्त है। इसकी प्रसिद्धि में सर्वप्रथम तो इसके संस्थापक राजे महाराजाओं की मानसिक कल्पना एवं तज्जनित राज–व्यवस्था और विस्तार है। यों तो इस मिथिला का वर्णन इतिहासकारों ने भी कुछ कम नहीं किया है किंतु इससे भी अधिक इसकी ख्याति लब्धता तथा प्राचीनता तो इससे ही स्पष्ट होती है कि ऋषि मुनियों तक ने भी इसे नहीं भूलाया। फलतः ब्राह्मणों, आरण्यकों, पुराणों के साथ–साथ रामायण महाभारत में भी इस मिथिला का वर्णन अपनी विशदता में कुछ कम नहीं है। इन ग्रंथों के प्रायः मिथिला के प्रत्येक पक्ष का वर्णन प्राप्त है। ब्राह्मण ग्रंथों के आधार पर यह ज्ञात है कि उसी समय मिथिला के राजा सम्राट की संज्ञा से प्रतिष्ठित थे। सम्राट का सामान्य अर्थ ही है राजाओं का राजा–राजेश्वर। मिथिलाधिपति का सम्राट बनना ही इस बात का घोतक है कि तत्कालीन अनेक राज्यों को जीतकर वहां के राज राजा पर अपनी संप्रभुता कायम कर लेने में सक्षम हो चुके थे। शतपथ ब्राह्मण के काण्ड ग्यारह तथा वाल्मीकिय रामायण के आदि काण्ड का सर्ग 71 इसका प्रमाण है जहां सांकास्य राज्य को जीत कर कुशध्वज को राज्यारूढ़ करने का वर्णन किया गया है। पाण्डु तथा पाण्डु पुत्रों से तो इनकी प्रत्यक्ष लड़ाई हुई ही थी महाभारत के युद्ध में भी मिथिलाधिपति ने कौरवों का साथ दिया था। जातक ग्रंथों में वर्णित महाराज जनक की कथा से भी ज्ञात होता है कि सुदूर देशों में इन्होंने अपना राज्य स्थापित किया था– अंग देश की प्राचीन राजधानी मालिनी या चंपा इसका प्रमाण है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी मिथिला के विदेह राज्य के नृपति को सम्राट कहा गया है। शासन व्यवस्था राज तंत्रात्मक होते हुए भी राजा के चुनाव में जनमत का स्थान दिया जाता था। मंत्रिपरिषद तथा जनपरिषद के निर्णय को राजा मान्यता प्रदान करते थे। राजा को नियंत्रित रखने के लिए सूत एवं ग्रामणी नामक संस्थाएं होती थी। ये सूत एवं ग्रामणी के सदस्य परिषद् या समिति की बैठक में भी भाग लेते थे, इन बैठकों में राजा को भी उपस्थित होना होता था। समिति को इतना अपार अधिकार प्राप्त होता था कि वह राजा का निर्वाचन भी करती थी तथा उन्हें पदच्युत भी। वैदिक युग में इस समिति के साथ साथ समा का नाम भी मिलता है। इस प्रकार का वर्णन जैमिनी उपनिषद्, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक उपनिषद में भी आया है। समाज में इस भित्ति तथा समा का इतना अधिक आदर सम्मान था कि इसे प्रजापति की दो पुत्रियों माना जाता था। प्रजा का समुचित पालन करना राजा का परम कर्तव्य था, वरना नृपति गण को अनादर तथा अपमान भाजन बनना पड़ता था। और यह तो इससे भी स्पष्ट है कि संत तुलसीदास ने भी सोलहवीं शताक्षर में रचित अपनी रामायण में राजा का कर्तव्य निर्धारित करते हुए कहा है[1]–

''जासु राज प्रिय प्रजादुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।''

जातको में भी जहां कौशल एवं हिमवत प्रदेश में महा दुर्भिक्ष का उल्लेख हुआ है वहां मिथिला जनपद का वर्णन मिलता है। समाज में विभिन्न प्रकार का कर्म संपादन करनेवाली विभिन्न जातियां थी

जिनमें वणिकों का भी एक वर्ग था जो एक दूसरे जनपदों से भी व्यापार करते थे। विदेह जनपद में भी व्यापार हेतु बाहर से व्यापारी आते थे जाते थे। वर्तन बेचने वाले व्यापारी श्रावस्ती नगर से विदेह में आया करते थे। ये व्यापारी सामुद्रिक मार्गों से जहाजों से भी व्यापार करते थे। इन व्यापारियों का भी अपना परिषद (गण) हुआ करता था। पादनामक मुद्राएं भी प्रचलित थी। इसी प्रकार से शतमान भी एक रजतमुद्रा थी जिसे राजा विदेह जनक ने यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणों में से प्रत्येक ब्राह्मण को तीन तीन शतमान दान दिया था विद्यार्थी आचार्य कुल में वास कर शिक्षा ग्रहण करते थे। इनकी शिक्षावाधि प्रायः 12 वर्षो की हुआ करती थी। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण महाराज दशरथ पुत्र स्वयं राम है जिन्होंने विश्वामित्र के आश्रम में रहकर शिक्षा ग्रहण की थी। गुरू के सामने विद्यार्थी को शान्त दान्त उपरत, तितिक्षु एवं समाहित साबित करना पड़ता था द्विजातियों तथा शूद्रों को एक प्रकार की समान शिक्षा नहीं दी जाती थी जिसका प्रमाण महाभारत का कर्ण है द्रोण और एकलव्य भी इसके प्रमाण हैं।

मिथिला शिक्षा एवं संस्कृति के केन्द्र रूप में उस युग में भी प्रतिष्ठित थी जहां अन्यत्र से भी विद्वान शास्त्रार्थ तथा ज्ञान प्राप्ति हेतु आया करते थे। जनक ने स्वयं भी आयुर्वेद पर भाष्य अथवा अन्य ग्रंथ का प्रणयन किया था। ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था जिनपर अन्य वर्गों की भांति राजा का साधिकार शासन नहीं था। वल्कि इन्हें राजकुल से सर्वधा सर्वोच्च सम्मान प्राप्त था। शूद्रों को यज्ञ एवं तपश्वयां से पृथक् रखा जाता था। वरन् शूद्रों को दान के रूप में ब्राह्मणों को दान तक में दिया जाता था। वृहदारण्य उपनिषद 8, 4, 50, 2, 1, 20 से यह ज्ञात होता है कि ज्ञानी या ज्ञवल्क्य ने सेवार्थ शूद्रों को दान में प्राप्त किया था।[2] ज्ञान दान प्राप्त कर क्षत्रिय भी ब्राह्मण हो जाते थे। राजाओं का राजर्षि तथा राजर्षि से ब्रह्मर्षि होना इस बात को सिद्ध करता है। समाज में बहु विवाह की प्रथा थी। किंतु यह अधिकार मात्र पुरूषों को था, स्त्रियों को नहीं और इस अधिकार का उपयोग प्रायः राजा महाराजा ही कर पाते थे। पर्दा प्रथा भी समाज में मर्यादित रूप में व्याप्त था। राजा विदेह जनक किसी भी प्रकार का मांस भक्षण नहीं करते थे जिसका वर्णन भवभूति ने अपने उत्तर रामचरित में किया है। यज्ञवल्क्य जैसे महाज्ञानी मनीषि इसी मिथिला जनपद के निवासी थे। महाराज जनक स्वयं जिनकी गुरूवत प्रतिष्ठा करते थे उनकी कर्म भूमि भी यहीं मिथिला रही है। इसी विदेह भूमि में गौतम, कपिल, कणराद, जैमिनि, शतानन्द, श्रृंगी ऋषि आदि जैसे प्रतिभा सम्पन्न तथा विभिन्न दर्शन के ज्ञाता एवं प्रवर्तक हुए जो मिथिला राज्य की शैक्षणिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि को उजागर करते हैं।

विदेह एवं वैशाली इसी मिथिला के दो अति प्राचीन राज्य है जो राजतंत्र होते हुए भी जन–तंत्रात्मक पद्धति में इतिहास में अपना स्वतंत्र स्थान रखते हैं। यद्यपि ये राज्य आरंभिक काल में राजतांत्रिक पद्धति के ही थे। ऋषि विश्वामित्र के साथ राम एवं लक्ष्मण का आगमन इसी मिथिला के एक राज्य वैशाली की सीमा होकर हुआ था। तब राम ने वर्तमान शाहाबाद के वक्सर के निकटवर्ती अंचल में स्थापित सिद्धाश्रम के ऋषिके यज्ञ में बाधक राक्षसों का हनन किया और राजगृह के गिरिव्रज होते हुए सोनभद्र नदी को पार कर नौका से गंगा को भी पार कर शालिग्रामी नारायणी के मार्ग से मिथिला प्रशासन के क्रम में राजा विशाल की राजनगरी वैशाली से प्रवेश किया था। इस वैशाली की सम्पन्नता एवं वैभव वालमीकीय रामायण के वर्णन से स्पष्ट होता है–

''ततो मुनिवस्तूर्ण जगाम सह राघवः।
विशाला नगरी रम्यां दिव्यां स्वगोपमां तदा।।''

इस समय वैशाली (विशालपुरी) में इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुमति का राज्य शासन था जिसने मुनि समेत इन दोनों राजकुमारों का स्वागत सत्कार किया। यह भी इस बात को प्रमाणित करता है कि उस काल में भी यह मिथिला का मिथिला जनपद (सार्वभौम स्वतंत्र वैशाली राज्य) कितना समुन्नत एवं वैभवपूर्ण था तथा इसकी राजकीय व्यवस्था किया कोटि की थी।

मिथिला जनपद के दूसरे राज्य विदेह राज्य में प्रवेश के हेतु मिथिला के दक्षिण पश्चिम भाग में अवस्थित इस वैशाली को पार कर पुनः उस काल में भी प्रवहमान वाग्मती को पारकर विदेह राज्य के गौतम आश्रम (अहिल्या स्थान) जो वर्तमान दरभंगा जिला के उत्तर पश्चिम ब्रह्मपुर गांव के नजदीक में है होते हुए जनकपुर के लिए यात्रा की थी।[3]

वाल्मीकीय रामायण में वर्णित राघवेन्द्र राम के अयोध्या से विश्वामित्र के आश्रम तथा आश्रम से जनकपुर प्रस्थान में मार्ग के इस वर्णन से भी स्पष्ट हो जाता है कि मिथिला जनपद का विस्तार गंगा एवं शालिग्रामी से इस पार उत्तर पूर्व की ओर था, और वैशाली तथा विदेह राज के बीच गंडक एवं बाग्मती नदियां विद्यमान थी। मिथिला के इन दो राज्यों विदेह एवं वैशाली में (इसा पूर्व छठी शताब्दी) वैशाली में गणतंत्रीय शासन प्रचलित था, जिसका वर्णन जातक ग्रंथों में प्रचूरता से हुआ है। भगवान बुद्ध तथा भगवान महावीर जैसे बौद्ध एवं जैन धर्म प्रवर्तकों का भी यह राज्य धर्मस्थल रहा। सीरध्वज जनक पुत्र मानुमान जनक के पश्चात जनक वंश के इकत्तीस राजाओं ने मिथिला की इन राज्य सीमाओं पर शासन किया। वैशाली के इस गणतंत्र में लिच्छवी प्रधान थे, जिसका संघ राज्य वज्जीसंघ कहलाता था। यह वज्जी संघ आठ गणराज्यों का समूह था जिनमें वज्जि, विदेह, लिच्छवी, ज्ञातृक आदि प्रधान हैं। इनमें वज्जि को कुछ विचारक विद्वान विदेहों की ही एक शाखा मानते हैं। मिथिला के इस पूरे क्षेत्र वैशाली एवं विदेह में अग्निपूजा का विधान था जिसे विदेह माथव सरस्वती नदी के पूर्वोत्तर प्रदेशों की विजय अभियान काल में प्रारंभ कर सफलता प्राप्त की थी। इस वैशाली एवं वज्जिसंघ को भगवान् बुद्ध के काल में पूर्वोत्तर भारत में उच्चतम स्थान प्राप्त था। यहीं से प्रायः इतिहासकारों ने भारत के ऐतिहासिक युग का आरंभकाल भी माना है। इससे पूर्व (ई.–50 5–6 शती) का युग इतिहास की दृष्टि में प्रागैतिहासिक युग है।[4]

इसी प्रकार सातवीं के पूर्वार्द्ध में चीनी यात्री हुएन–त्यं वैशाली से संलग्न वज्जियों के राज्य की राजधानी चानसुन (जनकपुर) में थी, इसके राज्य का घेरा 300 मील के करीबन था। यन चीनी यात्रियों के वर्णनानुसार इस अंचल की अधिकांश जनता ने बौद्ध धर्म का परित्याग कर दिया था, इन लिच्छवियों की न्याय पद्धति अति श्लाध्य थी, दोष को पूर्णतः प्रमाणित किये बिना दोषी को दंड देने का विधान नहीं था। पवनी पोत्थकर इनकी दंड संहिता का नाम था।

मगध साम्राज्य का आधिपत्य

मिथिला के इस गणराज्य की समाप्ति के बाद से शासन के इतिहास को देखने से यह बातें स्पष्ट होती है कि पुनः इस परिसीमा में अन्य बाह्यागन्तुक राजाओं ने ही राज्य किया और गणतंत्र का नाम मिट गया। मिथिला का वह राज्य जो विदेह एवं वैशाली के रूप में विस्तार प्रापत कर चुकी थी, प्रथमतः तो वैशाली गणराज्य में विदेह का समावेश कर चुकी और तत्वश्वात् अजातशत्रु से विजीत हो पूर्णतः विनष्टता को प्राप्त कर गयी। इस प्रकार वैशाली के गणराज्य पर ही नहीं मिथिला जनपद पर मगध साम्राज्य का आधिपत्य स्थापित हो गया।

हर्यक कुलोद्भव अजातशत्रु के बाद उसके पांच वंशधरों उदायिन अनिरूद्ध मुंड नागदशक आदि ने वैशाली वं विदेह पर शासन किया। इस कुल के इस नागदशक के शासनकाल में वाराणसी के शासक शिशुनाग ने उन्हें पराजित कर मगध साम्राज्य के सिंहासन पर अपना आसन जमाया। तबसे इस शिशुनाग वंश के वंशजों के कालाश्यों निर्वद्धन आदि नौ भाईयों ने शासन किया। शिशुनाग ने प्रद्योत राजवंश के अवन्ती नरेश को हराकर अवंती राज्य को भी मगध साम्राज्य में मिला लिया था। भीतरी क्लह के कारण ये राजे राजच्युत किये गये और वहां नन्दवंश की स्थापना कर नये राजवंश की गई। उग्रसेन ने महापद्मनन्द का विरूद धारण धर नये राजवंश नन्दवंश की स्थापना की। इसने हिमालय से विन्ध्याचल तक के पांचाल, कौरव, हयहय, कालक कलिंग, अश्यक, शूरसेन, मैथिलों आदि को जीतकर सर्व क्षात्रान्तक राज्य किया। क्षात्रान्तक का अर्थ क्षत्रिय विरोधी से है। इस प्रकार इन महापद्मनन्द ने उत्तर भारत के विशाल भू–भाग पर मगध साम्राज्य की मुहर लगाई। महापद्मनन्द के इस विजय एवं साम्राज्य क्षेत्र में मिथिला के मैथिलों पर विजय का स्पष्ट उल्लेख है जिसका समय ई.पू. चौथी शताब्दी है। इसने मिथिला के उस भू–भाग को भी जो अजातशत्रु के शासन काल में छूट–फूट गये थे उसे भी अपने राज्य में मिला लिया। इस महापद्मनन्द के आठ पुत्रों पण्डुक, पण्डुगति, मूतपाल, राट्रपाल, गोविषणक, दशसिद्धक, कैवर्त्त एवं धन के शासनकाल में भी संपूर्ण मिथिला इसी साम्राज्य में सम्मिलित थी। और नंदवंश का समूल नाश मौर्यवंशीय क्षत्रीय चन्द्रगुप्त के द्वारा आचार्य चाणक्य के सचिवत्व में हुआ। इस सक्षित्रान्तक नन्दवंश का नाश क्षत्रिय राजपुत्र चन्द्रगुप्त के द्वारा ई.पू. 322–21 में हुआ। इस तरह मिथिला पर चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन प्रारंभ हुआ। जिसमें लगभग

300 वर्ष ई.पू. विन्दुसार तथा ई.पू. 268 में प्रसिद्ध सम्राट अशोक गद्दी पर बैठा।[7] इस अशोक के साम्राज्य की सीमा थी– उत्तर–पश्चिम में हिन्दूकुश, पूर्व में सागर पर्यन्त बंगाल कलिंग पश्चिम में पश्चिमी सागर दक्षिण–पूर्व में हैदराबाद मैंसूर। अतः मिथिला जनपद क्षेत्र अशोक के साम्राज्यधीन भी था ही। मौर्यां का यह शासन उत्तर भारत में ई.पू. 185 तक कायम रहा। अभी भी इसी मिथिला जनपद के राज्यान्तर्गत क्षेत्र के मुजफ्फरपुर एवं चंपारण में अशोक स्तंभ वर्तमान है– जो मौर्यों के शासन के प्रत्यक्ष साक्ष्य हैं।

चन्द्रगुप्त और चाणक्य के मिलने से मौर्यकालीन शासन का प्रारंभ ही मणि–कांचन योग से प्रारंभ सा हुआ। एक तरफ चन्द्रगुप्त का बल–विक्रम साहस एवं संगठनादि की अद्भुत क्षमता तो दूसरी तरफ विष्णुशमां ऐसा व्यक्तित्व एवं दृढ़ प्रतिज्ञ का मंत्रित्व जिसे इतिहास पुराण भी चाणक्य एवं कौटिल्य के नाम से विश्रुत करता है। फलतः संपूर्ण उत्तर भारत की भावना ही राजभक्ति से स्निग्ध हो चुकी थी। जन–जन के हृदय में जाग्रंत देश–प्रेम की भावना ने यवन विजेता को भी अपने द्वारा विजय प्राप्त पश्चिमोत्तर सीमा प्रांतों को भी चन्द्रगुप्त को समर्पित कर लौट जाने के लिए वाध्य कर दिया। इस चन्द्रगुप्त का साम्राज्य क्षेत्र ही संपूर्ण आर्यावर्त्त था, निश्चय ही मिथिला उससे बाहर नहीं थी।[8] इसका साक्ष्य 1913–14 ई. में की गई वैशाली गढ़ की खुदाई से प्राप्त मौर्यकालीन मोहरें हैं। चन्द्रगुप्त द्वारा अर्जित इस साम्राज्य पर उसके पुत्र विन्दुसार तथा पौत्र अशोक ने भी सफलतापूर्वक प्रशासन किया। जर्नल आफ दी विहार रिसर्च सोसाइटी के अनुसार अशोक ने मगध एवं मिथिला के अनेक बौद्धधर्म प्रचारकों को धर्म प्रचार के लिए तिव्वत भेजा था। ई.पू. 238 में अशोक की मृत्यु के पश्चात भी लगभग 50 वर्षो तक इसके वंशधर सात राजाओं ने शासन किया जिसमें अंतिम राजा वृहद्रथ था। किंतु क्रमशः कमजोर पड़ते गये मौर्य साम्राज्य को अंत में अपने ही ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र के विद्रोह के कारण समाप्त होना पड़ा। उधर यह भी बात देखने को मिलती है कि मगधेश महापद्मनन्द एवं सम्राट अशोक की कलिंग विजय का बदला भी कलिंग के प्रबल प्रतापी चेदिवंशीय राजा खाखेल ने चुकाया और अपने को स्वतंत्र कर दो–दो बार पाटलिपुत्र को नत किया। और इस प्रकार से संपूर्ण मौर्य साम्राज्य पर दक्षिण में शातवाहनों का, पूर्व में खाखेल का तथा उत्तर में पुष्यमित्र का राज्य कायम हो गया। इसी शुंगकुलीय सेनापति पुष्यमित्र के राज्यान्तर्गत मगध का वह गृह राज्य क्षेत्र है जिसमें मिथिला भी है। इसी भारद्वाज गौत्रीय ब्राह्मण पुष्यमित्र के शासनकाल में ग्रीक राजाओं का आक्रमण हुआ और आक्रामक ही समरशायी हुए। दिव्यावदान के अनुसार यह पुष्पीमित्र बौद्धों के प्रति अनुसर असहिष्णु तथा क्रूर था फिर भी मारहुत के बौद्ध स्तूप और वेदिकाओं का निर्माण इसके शासन काल में हुआ। सांची का तोरण द्वार भी विदिशा के कलाविदों द्वारा इसी के काल में निर्मित हुआ। इस शुंगवशीय दश राजाओं में अन्तिम राजा देवहूति था जिसके संबंध में विष्णुपुराण में कहा गया है–

''देवभूतिं तु शुङ्ग राजान व्यसनिनं
तस्यैवामात्यः करावो वसुदेव नामा।
तं निहत्थ स्वयमवनीं मोक्ष्यति।

अग्निमित्र वसुमित्र आदि अपने पूर्वज की तरह ही पराक्रमी एवं बलशाली राजा देवहूति हुए। आर.सी. मजूमदार के अनुसार इस शुंगवंश का शासन ईसा पूर्व 73 वर्ष में करावायन वासुदेव ने मगध का शासन शुंगकुल से लेकर अपने अधीन कर लिया। वासुदेव, भूमिमित्र, नारायण तथा सुर्शमण इस करावायन वंश के चार राजे हुए जिन्होंने लगभग 45 वर्षों तक राज्य किया। इस करावकुलवंशीय शासकों ने भी शुंगवंशीय शासकों की तरह अपने शासन काल में वैदिक यानी ब्राह्मणधर्म का ही उत्थान किया। इनके शासन काल में भी मिथला पर पूर्व की भांति ही इनका भी शासनाधिकार रहा। तत्वश्चात् मगध साम्राज्य पर आन्ध्रों (शातवाहन) का राज्य हुआ। उत्तरापथ पर इस वंश के शिमुक, कान्ह, शातकान, वेदश्री और शक्तित्री प्रमृति ने राज्य किया। इनके राज्य के पश्चिमी भाग पर लगभग 78 ई. में शकों का कव्जा हो गया। आन्ध्रों के इस शासन का समर्थन डॉ. भंडारकर ने अपनी पुस्तक में भी किया है। कलिंग राज खाखेल ने भी अपने शासन के वारहवें वर्ष में अपनी विजय के द्वारा उत्तरापथ के राजाओं को भी अस्त किया अपने पराक्रम के क्रम में अपने अश्वो ंऔर गजों तक को पवित्र गंगाजल का पान कराया तथा मगध राज वृहस्पतिमित्र से अपने चरणों की पूजा करवायी। मगध और अंग की अपार संपत्ति का अपहरण किया। इस प्रकार मगध का शासक होने तथा उत्तरापथ को आक्रांत करने की गणना से ही स्पष्ट होता है कि मिथिला पर भी उसका आधिपत्य

था। तत्पश्चात् ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर मिथिला पर विदेशियों का शासन प्रारंभ हुआ। ईसाई अनुश्रुतियों के आधार पर कहा गया है कि पह्लव राजवंश के प्रसिद्ध राजा गुदफणं का संपूर्ण भारत पर राज्य था। इस तथ्य से भी मिथिला पर पह्लवों का राज्याधिकत्य जाहिर होता है। इन पह्लव राजाओं ने भारत में आने पर बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था तथा प्राकृत भाषा का प्रचार भी किया था। इसी प्रकार से मिथिलांचल में भी विक्रम संवत् के साथ–साथ अभी तक जो शक सम्वत् प्रचलित है इससे शकों का आधिपत्य भी मिथिला पर घोतीत होता है। इस शक सम्वत का प्रारंभ 68 ई., विक्रमाव्द की स्थापना के 135 वर्ष पाश्चात् हुई जो शको के भारत पर दूसरी वार के आक्रमण में अवन्ती (उज्जनी) पर अधिकार कर लेने के पश्चात् की शक्ति प्रसार का प्रतीक है। वैशाली की खुदाई में प्राप्त मोहर नं. 248 जिसके बीच में एक सांढ़ का चित्र है और किनारे में महाक्षत्रप स्वामी रूद्रसिंह की पुत्री तथा रूद्रसेन की बहन प्रमुदमा की मोहर ऐसा अंकित है[2] यह सिद्ध करता है कि महाक्षत्रप रूद्रसेन का आधिपत्य वैशाली (संपूर्ण तिरहुत) पर हो गया था, अन्यथा वैशाली गढ़ की खुदाई में इस मुहर तथा विदेशी कला की छाप का प्रतीक पंखयुक्त मानव आकृति का पका हुआ मिट्टी का टुकड़ा नहीं मिलता। डा.वी.सी.पाण्डेय ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास के पृष्ठ 678–80 में लिखा है कि चौथी शताब्दी में शक, मुरूण्ड भारतवर्ष मं विद्यमान थे। इन शक मुरूण्डों का भी आधिपत्य किसी समय पूर्वी भारत के पाटलिपुत्र तथा उसके आसपास के प्रदेशों पर हो चुका था। इससे भी शक मुरूण्डों का मिथिला पर शासन प्रमाणित होता है क्योंकि मिथिला का राजनीतिक संबंध पाटलिपुत्र एवं मगध के साथ रहता आया था। इसके पश्चात् कुषणकुल के सर्वोच्च शासक कुनिष्क का साम्राज्य उत्तर भारत के बिहार बंगाल में भी था, इससे संबंधित सिक्के भी मिले हैं। तिव्वती एवं चीनी लेखों में भी पूर्वी भारत के सोकेद (साकेत सहेत महेत) एवं पाटलिपुत्र के नरेशों के साथ हुए संघर्षो का वर्णन किया है। धम्मपिटक निदान सुत्त में भी कनिष्क के पाटलिपुत्र पर आक्रमण का वर्णन हुआ है जो प्रमाणित करता है कि उसने यहां से बहुत बड़ी मात्रा में रकम यहां तक कि भगवान् बुद्ध के पवित्र एवं ऐतिहासिक भिक्षापात्र तथा कवि अश्वघोष को भी प्राप्त किया था। कनिष्क के शासनकालीन सिक्के वैशाली की 1923–14 की खुदाई में भी प्राप्त हुए थे, सारन जले के खेलवा की खुदाई में भी कुषण कालीन ताम्र सिक्के मिले थे जिसे डॉ. उपेन्द्र ठाकुर ने भी अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ मिथिला, पृष्ठ–180 पर कबूल किया है। इस प्रकार के अनेकों साक्ष्य प्राप्त है जो कुषाणों के पाटलिपुत्र, तो क्या वैशाली एवं तिरहुत पर शासन के प्रमाण पेश करते हैं।

कुबय कुल के बाद नागकुल का शासन होता है। इसके पश्चात् पाटलिपुत्र पर कोट कुल का स्थानीय राज्य होता है। तत्पश्चात वकाटक कुल का राज्य होता है जिसका सबसे प्रतापी राजा हरिषेण पांचवीं शदी के अंतिम चरण में हुए थे। किंतु इन वकाटकों के मिथिला पर शासन को कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नहीं है। इसके बाद भारत में गुप्तराजकुल जो हिन्दू राज्यकाल का स्वर्णयुग गिना जाता है का शासन प्रारंभ होता है। गुप्त वंश के शासकों में क्रमशः श्रीगुप्त ने 275–300 ई. तक, महाराज घटोत्कच गुप्त 300–319 ई. तक महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त प्रथम 320–335 ई. तक शासन किया। चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवी गण पर अपना प्रभाव जमा कर उनकी कन्या कुमार देवी का पाणि ग्रहण भी किया। इस प्रकार उसने अपनी प्रतिष्ठा एवं प्रभाव में वृद्धि ही की। सम्भवतया इस शादी संबंध के माध्यम से भी वैशाली (मिथिला) इनके शासन क्षेत्र में किसी प्रकार से आ गया होगा। इसके पश्चात् समुद्रगुप्त ने और भी अपने शासन का विस्तार किया जो कि इनकी पुस्तक प्रभाग प्रशस्ति से स्पष्ट होता है। इन्होंने पाटलिपुत्र से लेकर राज्य की सीमा का विस्तार उत्तरी सीमा पर नेपाल तक किया। अतः स्वाभाविक है कि बीच की भूमि मिथिला जनपद भी इनके राज्याधिकार में आ गया होगा। और इस प्रकार संपूर्ण भारत के विजेता रूप में मिथिला पर भी एक क्षत्र राज्य स्थापित किया होगा। तत्पश्चात् समुद्रगुप्त के अग्रज पुत्र रामगुप्त का शासन होता है, जो वस्तुतः क्लीव एवं नपुंसक था। फलतः इसे भास्कर चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इस साम्राज्ञी घ्रुव स्वामिनी का वरण भी कर लिया और सम्राट रूप में विक्रमादित्य के नाम से अभिभूषित होते हुए शकारि रूप में भी ख्याति प्राप्त कर ली। इस चन्द्रगुप्त द्वितीय (375 से 414 ई.) के शासन काल में गुप्त साम्राज्य की अनेक मुक्तियों–पुण्डवर्द्धन मुक्ति (उत्तर बंगाल) नगरमुक्ति (दक्षिण बिहार) श्रावस्ती मुक्ति (अवध प्रदेश) अहिक्षेत्र मुक्ति (रोहिल खंड) आदि के साथ–साथ तीरमुक्ति (तिरहुत या मिथिला) भी शासन क्षेत्र में रही।

और प्रत्येक शासन सुव्यवस्था की दृष्टि से प्रत्येक मुक्ति का एक–एक राजकुमार प्रतिनिधि रूप में करता था। जिसका सबूत वैशाली की खुदाई से प्राप्त शासकों के नाम की मुहर है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद गोविन्द गुप्त तिरहुत का शासक हुआ जिसकी राजधानी वैशाली में थी। जिसके अनेक प्रशासकीय पदाधिकारियों में तीर मुक्ति विनय स्थिति स्थापक अधिकरण, वैशाल्यधिष्ठानाधिकरण आदि प्रसिद्ध था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के पौत्र स्कंधगुप्त (455–467 ई.) के शासन काल तक तिरहुत पर गुप्त कुल का शासन यथावत् बना रहा। स्कंधगुप्त को पुष्यमित्रों तथा हुणों से कसकर लोहा लेना पड़ा था। फिर भी स्कंधगुप्त तथा इनके विमाता पुत्र प्रस गुप्त के शासन काल तक विशलगुप्त साम्राज्य का कोई भी प्रदेश बाहर नहीं निकल पाया था। बुद्ध गुप्त के शासन क्षेत्र में पुण्ड्रवर्द्धन मुक्ति (उत्तर बंगाल) की सीमा उत्तर में हिमालय तक फैली थी। इसी सीमा क्षेत्र के अंतर्गत नेपाल तथा बराह क्षेत्र भी आता है। इस बराह क्षेत्र को डॉ. लक्ष्मण वर्मा तथा डॉ. उपेन्द्र ठाकुर ने कोशी के पूर्वी किनारे पर चत्रागद्दी तथा हिमालय की त्रिवेणी नदियों के बीच माना है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि घटोत्कच गुप्त से लेकर बुद्ध गुप्त के शासन काल तक मिथिला गुप्त साम्राज्याधीन थी। इस गुप्त साम्राज्य के ही सामंत राजा औलीकर कुल के यथो ध्वर्मन ने अंतदैहि तथा बाहरी आक्रमणों से चरमराये इस गुप्त साम्राज्य से अपने को स्वतंत्र घोषित कर लिया तथा युद्धों के द्वारा अन्य प्रदेशों को भी गुप्त साम्राज्य से स्वायत कराना प्रारंभ कर दिया इस प्रकार से 551 ई. में गुप्त साम्राज्य का लगभग अन्त हो गया तथा इस औलीकरवंशीय यशोवर्मन का शासन विस्तार होने लगा। इसने हूण आक्रामक तारमान के पुत्र मिहिरगुल को हराकर उससे अपना चरण पुजवाया और अपने राज्य की सीमा उत्तर में हिमालय पर्वत दक्षिण में उड़ीसा का महेन्द्रगिरि पर्वत पश्चिम में सागर–तट तथा पूरब में ब्रह्मपुत्र नदी तक कायम की। इस प्रकार कुछ समय के लिए मिथिला पर भी यथोधर्मन का शासन रहा। शासन के फेर–बदल के स्वरूप में मिथिला पर कभी परवर्ती गुप्त राजकुल का, कभी मौखरियों का, कभी गौड़ के राजा शशांक का तो कभी थानेष्वर के पुष्यभूति वंशीय हर्षवर्द्धन का राज्य रहा। मुजफ्फरपुर के कटरागढ़ से प्राप्त एक मग्न प्रस्तर खंड तथा ताम्रपत्र से भी परवर्ती गुप्तों का मिथिला पर शासन प्रमाणित होता है। अवन्तिवर्मन के पुत्र ग्रहवर्मन का विवाह हर्षवर्द्धन की बहन राज्यश्री के साथ हुआ, इस ग्रहन वर्मन को शंशांक और देवगुप्त ने रण में मार गिराया तथा मौरवटी कुल की इस महाराणी राज्यश्री को बंदी बनाकर जेल में डाल दिया। पूवोत्तर भारत पर बराबर इस प्रकार की लड़ाई होती रही और शासन का उथलपुथल होता रहा। तथा बाद में उत्तर भारत पर पुष्यभूति वंशीय वर्द्धन राजकुल का शासन कायम हो गया। हर्षवर्द्धन के ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्द्धन को शादी का लोभ दिखाकर एकाकी अपने महल में बुलवा विश्वासघात से वध कर शशांक ने कुछ काल के लिए उत्तर भारत के बहुत बड़े भाग पर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित कर ली जिसमें अन्यान्य प्रदेशों के अतिरिक्त संपूर्ण बिहार भी था। यह भी अनुमान सिद्ध लगता है कि मिथिला पर शशांक का भी शासन हुआ। किंतु हर्षवर्द्धन ने अपने शासनकाल (606–646, 47) के बीच प्रथम छः वर्षो तक अविराम युद्ध कर उत्तर भारत में साम्राज्य विस्तार किया गौड़ाधिपति शशांक का भी पराभाव कर दिया।[10] चीनी यात्री ह्वेनसांग के लेखानुसार पंच गौड़ों में एक गौड़ मैथिल (पूर्वोत्तर बिहार, बंगाल तथा आसाम) पर भी इसका शासन हुआ। और गुप्तों की तरह इसने भी शासन सुविधा हेतु राज्य को मुक्तियों तथा विषयों में बांट रखा था। जिसकी एक मुक्ति तीरमुक्ति की यात्रा हुएनसांग ने 635 ई. में की थी। इस हर्षवर्द्धन ने बौद्ध सभा भी करवायी थी। हुएनसांग ने वाणभट्ट का अनुमोदन करते हुए मिथिला को पो–लो–मेन–कुओ अर्थात् ब्राह्मणों का देश कहा है। वाणभट्ट हर्षवर्द्धन की राज्यसभा के समासद थे। हर्षचरित में भी उत्कल, नेपाल सुराष्ट्र के साथ मिथिला पर भी हर्ष की विजय उल्लिखित है। हर्षवर्द्धन की मृत्यु (647 ई.) के पश्चात् माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने (जो 672 ई. तक जीवित था) पुनः अपने राज्य का विस्तार करते हुए मन्दार भागलपुर जिला को भी आधिपत्य में किया जो मिथिलान्तर्गत का ही जिला था जिसका समर्थन बी.पी.सिंह के 'दी डिबलाइन ऑफ दी किंगडम ऑफ मगध' से भी होता है। प्राकृत काव्य सउड वहा के कवि वाकपति राज के अनुसार असाधारण विजेता यथोवर्मन हुआ जिसको भी तिरहुत पर अधिकार हुआ था। इस यथावर्मन का काल आठवीं शदी का आरंभ लगभ 721 ई. है। तत्पश्चात् कश्मीर साम्राज्य के सम्राट ललितादित्य ने यशोवर्मन को पराजित कर उसके संपूर्ण राज्य को अपने अधीन कर दिया, जिसमें तिरहुत क्षेत्र भी था। कर्कोटक कल के इस प्रतापी राजा ललितादित्य गुक्तापीड़ का शासन

काल 724 से 760 ई. है। कन्नौज विजय के बाद उसने मगध गौड़ कामरूप एवं कलिंग को रौदते हुए दक्षिण के चाकुक्यों पर चढ़ाई कर मालवा, गुजरात के साथ सिंध के अरबों को भी परास्त किया और संपूर्ण उत्तर भारत का स्वामी बन गया जिसका विशद् वर्णन कह्लण की राजतरंगिणी में मिलती है। इसके बाद पालवंश का भी राज्य स्थापित होता है। यों तो पालवंश के संस्थापक राजा को वहां लोगों ने अराजकता तथा उपद्रव आदि से बचने के लिए अपना प्रतिराजा चुना था, जिसका नाम गोपाल था। लगभग आठवीं शताब्दी के मध्य का निर्वाचित यह राजा गोपाल बंगाल एवं तिरहुत के राज्य सिंहासन पर बैठा। इसी ने पालवंश की स्थापना की। इनकी मृत्यु 770 से 780 के बीच हुई। डॉ. उपेन्द्र ठाकुर ने इस चन्द्रकुल का राज्य भंगाल (बंगाल) कामरूप (आसाम) तिरहुत (तीर मुक्ति) पर बताया है। गोपाल के बाद इस वंश के राजाओं में धर्मपाल 780–815 ई. ने शासन चलाया। तिव्वती लामा नारानाथ के अनुसार धर्मपाल द्वारा विजित राज्यों में तिरपुते (तिरहुत) एवं गौड़ था। धर्मपाल तथा नाथमट्ट द्वितीय के बीच मुंगेर के मैदान में भीषण लड़ाई हुई थी। उस समय भी मुंगेर तिरहुत का ही अंग था और आज मुंगेर का कुछ भाग तथा भागलपुर तिरहुत का ही क्षेत्र माना जाता है। खालिम पुर का लेख, भागलपुर का दानपत्र, तथा कैसव प्रशस्ति इसका स्पष्ट प्रमाण है कि बिहार पर धर्मपाल का अक्षुण्ण अधिकार था। बिहार में प्राप्त नारायण पाल के उत्कीर्ण अभिलेखों से भी तिरहुत एवं बिहार के अन्य भागों पर इनका अधिपत्य प्रमाणित होता है। नारायण पाल के शासन काल में ही प्रतिसार राजा प्रथम महेन्द्र पाल के मगध तथा उत्तर बिहार पर अधिकार जमा लिया था जिसने अपने अनवरत युद्धों के द्वारा पैतृक साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार कर लिया था। महेन्द्र पाल ने अपने शासन के तेरहवें वर्ष में ही संपूर्ण तिरहुत तथा उत्तरी बंगाल को अपने साम्राज्यान्तर्गत कर लिया था। प्रतिहारों के बाद चन्देलों का पलरा भारी पड़ता है। 948 ई. के लगभग में जेजाकमुक्ति के चंदेल राजा यशोवर्मन ने अपने को प्रतिहार सम्राट देवपाल के साम्राज्य से अलग स्वतंत्र कर लिया था। खुजराहो का उत्कीर्ण शिलालेख (953–54 ई.) यह प्रमाणित करता है कि चन्देल भूप हर्ष का पराक्रमी पुत्र यशोवर्मन ने अतिसुगमता से पालों का पराभव किया था। इसके साथ ही कलिंग के किला को जीता, जुर्जरों को नत किया, मैथिलों को जीता। खुजराहों का ही उत्कीर्ण अभिलेख यह भी सिद्ध करता है कि चन्देलों ने गुर्जर प्रतहारों को पराजित कर तीर मुक्ति भी प्राप्त कर लिया था। एपिग्राफिक इंडिका के श्लोक संख्या 44 के अनुसार यशोवर्मन के पुत्र द्यंग उद्भट योद्धा ने अपने शासनकाल 954–1000 ई. तक में पिता द्वारा अर्जित भू–भाग को पूर्णतः सुरक्षित रखा तथा युद्धों में शत्रुओं का विनाश भी किया।[11] पुनः कलचुरी भूप गांगेय देव विक्रमादित्य ने 1019 ई. के पूर्व तिरहुत (मिथिला) पर अधिकार कर लिया था। किंतु 1026 ई. तक पुनः महीपाल ने काशी से मिथिला तक के संपूर्ण भू–भाग पर अपना कव्जा जमा लिया। इस प्रकार जेजा का मुक्ति के चन्देलों के पश्चात् तिरहुत पर डाहल के कलचुरियों अथवा चेदियों का आक्रमण हुआ। इस गांगेय देव के संबंध में विवाद है कि किस वंश का था। 1019 ई. में लिखी गई एक नेपाली कायस्थ पण्डित की रामायण की पांडुलिपि के आधार पर गांगेयदेव कलचुरी वंश के थे जिन्हें चछवंशीय क्षत्रिय कहा गया है किंतु आर.सी. मजूमदार ने ली नेपाल से उद्धत करते हुए गांगेयदेव को कर्णाटकुलीय, तिरहुत नृपति नान्यदेव का पुत्र माना है।

जो भी हो किंतु यह तो स्पष्ट हो जाता है कि गांयेयदेव के पाल भूप महिपाल पर विजय प्राप्त कर लेने से ही उसका आधिपत्य तिरहुत पर हो गया। गांगेयदेव कलचुरी सिंहासन पर 1019 ई. में बैठा तथा 1040 ई. में इसकी मृत्यु हुई। तथा इसके पौत्र यशःकर्ण का 1073 ई. तक मिथिला पर अधिकार था। और तब सिलभ्यां लेवी, मुदित कुवलयास्व नाटक तथा विद्यापति की पुरूष परीक्षा के अनुसार 1097 ई. में नान्यदेव ने मिथिल की विजय की। जिसका समर्थन नान्यदेवकालीन पाण्डुलिपि ली–नेपाल–2, 197, 3 भी करता है। इस नान्यदेव के पुत्र पूर्व चर्चित गांगेयदेव नहीं वरन गंगदेव था। उधर कश्मीरी कवि विल्हण ने विक्रमांक चरित की रचना की उसके अनुसार चालुक्य भूप सोमेश्वर प्रथम आहवमल्ल (1043–68 ई.) ने मालव राज मोज के मालवा की राजधानी धारनगरी को विनष्ट करते हुए भगाया तथा कलचुरियों राजाकर्ण की शक्ति को भी चूर कर दिया। मोज की राज्य सीमा कैलाश पर्वत तक मानी गई है। और आज भी राजा भोज से संबंधित बहुत सारी कथा–कहानियां मिथिलांचल में प्रचलित है, कही–सुनी जाती है, ये अनुश्रुतियां मिथिलांचल के नर–नारियों में सामान्य स्थान रखती है, इससे राजा भोज के भी मिथिला पर आधिपत्य को

पूर्णतः नकारा नहीं जा सकता। इसी सोमेश्वर के पुत्र विक्रमादित्य षष्ठ ने पिता के जीवनकाल में ही उत्तर भारत के बंगाल आसाम आदि प्रदेशों को जीत लिया था। 1098 ई. के एक लेख के मुताविक उसने नर्मदा नदी को पार कर उस पार के नृपतियों को भी जीता था। उस कुल के अभिलेखों से नेपाल पर भी उनकी प्रभुसत्ता का पता चलता है। इस प्रकार यह कलचुरि राजा कर्ण तथा पमार राजा भोज के पराभव के बाद उत्तर भारत की राजनीति में प्रवेश हेतु कर्णाटों का मार्ग साफ हो गया था। फलतः मिथिला में कर्णाट कुलीय नान्यदेव ने सिमराओं की स्थापना की। इनके शासनरूढ़ होने का समय 1097 र्द. है। जो मुदित कुवलयाश्व तथा पुरूष परीक्षा के स्मारक छंद से भी प्रमाणित होता है।

सारांश

अन्ततः विचार करने पर तथा तबसे अबतक के इतिहास, पुराण, अन्य धार्मिक ग्रंथ समाज में प्रचलित पूजा प्रतिष्ठा शादी विवाह या अन्य रश्मरिवाज आदि का तुलनात्मक अध्ययन करने पर निस्संदेह एवं वेझिझक मानना पड़ता है, विश्वास अपने आप जमने लगता है कि ये सारी परंपराएं, अक्षुण्य संस्कृतियां कोई आज की स्थापना नहीं है, वरन् परंपरा से मान्य एवं समाहत है, जिन्हें प्रत्येक मिथिलावासी चाहे जिस किसी भी वर्ग, वर्ण या कौम का वह हो किंतु सरलता सहजता से आज भी पालन करता है अवश्य ही मिथिला की परंपरा प्रियता का प्रतिफल है। अतः स्पष्ट एवं सत्य ही मिथिला क्षेत्र परंपरा प्रिय है।

संदर्भ श्रोतः–

1. राजकृत सूत ग्रामरामः श.ब्रा. 3, 4, 1, 17, 13, 2, 2, 18
2. कल्प सूत्र, सक्रेट बुक ऑफ दी इस्ट 12 भूमिका।
3. डॉ. बी.सी.ला.– ट्राइप्श इन ऐनसियन्ट इंडिया, पृ.– 322
4. जैनसूत्र–सेक्रेट बुक ऑफ दी इस्ट, 22, 266
5. के.पी. जायसवाल– हिन्दू पोलिटी., द्वि.सं.– पृ. 49–50
6. के.पी. जायसवाल– हिन्दू पोलिटी., प्र.सं.– पृ. 112
7. नव मल्लई नव लेच्छई काशी कोशलगा अट्ठारस विगण रायाणो– निरपावलीय सुक्त– एस. वारेन, 1879
8. डाइनेस्टीज ऑफ दी कलि एज–पाजींटर (13, 69)
9. समुद्रवसनैशेभ्य आसमुद्रमपिश्रियः। उपाय हस्तैराकृष्य ततः सौऽकृत नन्दसात्।। जैन साहित्य–परिशिष्ट पनि– 7, 81
10. जर्नल ऑफ दी बिहार रिसर्च सोसाइटी, पृ.– 38, 351–52
11. विष्णुपुराण, गीताप्रेस, पृ.– 352
12. पालिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंसिएण्ड, एच.सी.राय चौधरी, पृ.– 403 ष.सं.
13. अलीं हिस्ट्री ऑफ इंडिया, बी.ए.स्मीथ, च.सं.–245–50
    आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, एनुअल रिपोर्ट– 1913–14
14. दी डिक्लाइन ऑफ दी किंगडम ऑफ मगध– वी.पी. सिंह
15. इंडियत हिस्टोरिकल क्वार्टरली– 21, 51
    हिस्ट्री ऑफ मिथिला– पृ. –190
16. दी डिक्लाइन ऑफ दी किंगडम ऑफ मगध–वी.पी.सिंह, 235, 244
17. प्राचीन भारत–डॉ. राजवली पाण्डेय, पृ.– 271
18. रीस डेविड–हुएन सांग का भ्रमण– 2, 63–80
19. हिस्ट्री ऑफ मिथिला, पृ.–205
20. डाइनेस्टीक हिस्ट्री ऑफ नौदर्न इंडिया, भाल्यूम–1, 103–एस.सी.राय